REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 8 | ISSUE - 6 | MARCH - 2019

सोलंकीकाल में हेमचन्द्राचार्य के ग्रंथो को मीला बहुमान

डा. शंकर वि. पटेल
आसि.प्रोफसर, श्री आदर्श आर्टस कोलेज, दियोदर (गुजरात)

❊ सारांश :

उत्तर गुजरात के पाटण में सिध्धराज जयसिंह के समय में हुए हेमचंद्राचार्य बहोत विद्वान थे। उन्होंने स्वतंत्र ग्रंथ लिखे। उसमें उनका सिध्धहेम शब्दानुशासन और काव्यानुशासन यह महत्व के ग्रंथ है। वह सर्वधर्म में माननेवाले और साहित्यप्रेमी इन्सान थे। शायद इसलिए सिध्धराज जयसिंह का समय सुवर्णयुग कहलाता होगा।

अपने यह उपक्रम पर उनके काव्यानुशासन ग्रंथ में किये हुए हेमचंद्राचार्य के ध्वनिविचार की चर्चा करनी है। हेमचंद्राचार्य कविता में ध्वनि का स्थान बताकर अलग-अलग प्रकार की ध्वनि, ध्वनि की व्याख्या, ध्वनी के बारे में संपूर्ण ख्याल दिया है। उन्होंने इस काव्य में रस का स्थान भी अपनो को बता दीया है। उनके मुताबिक काव्य का आनंद, काव्य का भावन या सर्जन के जो तीन अलग-अलग प्रयोजन ग्रंथकार ने बताये है उसमें से काव्य के आनंद की विभावना सबसे पहले समजाई है। इस आनंद की तीन विशेषताएँ ध्यानपात्र है।

(१) काव्य के रस के आस्वाद के साथ ही, तत्क्षण, आनंद का अनुभव होता है।
(२) इस काव्यारसास्वाद के अनुभव में भावक दूसरा सब भूल जाता है।
(३) इस रसानंद का अनुभव ब्रह्मानंद के अनुभव जैसा ही है।

ऐसी प्रीति या आनंद के लिए काव्य सर्जन होता है। यह आनंदरुप प्रयोजन काव्य के दूसरे सब प्रयोजनो में श्रेष्ठ है और उसका अनुभव कवि तथा सहदय दोनो को होता है। ऐसा हेमचन्द्राचार्य का मानना है।

हेमचंद्रसूरि का जन्म वि.सं.११४५ (इ.स.१०८९) में धंधुका में हुआ था। वि.सं.११५० (इ.स.१०९४) में उनको देवचंद्र सूरिने खंभात में दिक्षा दी। 'सोमचंद्र' मुनि नाम दिया। योग्यता प्राप्त होने के बाद उनको वि.सं.११६६ (इ.स.१११०) में सूरि-पदवी दी और उन्होने 'हेमचंद्रसूरि' के नाम से ख्याति प्राप्त की। उनका वि.सं.१२२९ (इ.स.११७३) में स्वर्गवास हुआ। उन्होने ८४ साल के समय में विद्या, कला और जैन संस्कृति के अपूर्व कार्य किये थे।

❊ सोलंकीकाल :

पाटण की स्थापना की मीति के बारे में विविध आनुश्रुतिक वत्तांतो में भिन-भिन्न उल्लेख मिलता है। जबकी एकाद अपवाद को बाद करके वि.सं.८०२ का साल सब में समान है। 'रासमाला' में एक कविता के आधार पर पाटण की स्थापना की मिति वि.सं.८०२ के माध वद ७ ने शनिवार दिया है। पाटण में गणपति मंदिर के शिलालेख मुजब वि.सं.८०२ के वैशाख सुद २ ने सोमवार, 'धर्मारण्य' मुताबिक वि.सं.८०२ के अषाढ सुद ३ ने शनिवार, फार्बस गुजराती सभाके हस्तलिखित पुस्तक संग्रह में से एक राजवंशावली के मुताबिक वि.सं. ८०२ के श्रावद सुद-२ ने सोमवार और 'विचारश्रेणी' मुताबिक वि.सं.८२१ के वैशाख सुद २ ने सोमवार- इतनी मितियाँ श्री रामलाल मोदी को मिली है। उन्होंने इन सब का अभ्यास किया और ज्योतिष मुताबिक उसका गणित करके चकासनी की है। यह मितिओ में से वि.सं.८०२ के वैशाख सुद २ ने सोमवार तथा अषाढ सुद ३ ने शनिवार इन दोनों के ही वार तिथि मिलते है। इस पर से श्री रामलाल मोदीने ऐसा अनुमान किया है कि वैशाख सुद २ ने सोमवार के दिन पाटण की स्थापना की धर्म क्रिया हुई होगी। उस वक्त शुरु किया हुआ यज्ञ का सत्र २ माह चालु होगा और लोग अषाढ सुद ३ ने शनिवार से गाम में रहने आये होंगे लेकिन यही लेख में श्री मोदीने आगे लिखा है : 'शनिवार और अषाढी ३ सही बसने का आरंभ का दिन हुआ और अखात्रिज सोमवार मुर्हूत के मुताबिक धर्म क्रिया के आरंभ का दिन होगा। पाटण की स्थापना अनुश्रुति क मुताबिक वि.सं.८०२ (इ.स.७५६) में जाना जाता है। स्थापना होने के बाद गुजरात में और गुजरात बहार के संस्कृत साहित्य में यह नगर आदि नामो से हुए

आधुनिक गुजराती में 'पाटण' नाम से प्रचलित हुआ। प्रभास पाटण से तथा भारत वर्ष में अलग अलग स्थल पर आये हुए 'पाटण' नामक नगरो से अलग दर्शाने के लिए इसको कई बार 'सिध्धपुर पाटण' भी कहते है। मुस्लिम इतिहासकार इसको 'नहरवाला' कहते है। जो 'अणहिलवाड' का मुस्लिम उच्चारण है। पाटण शहर से २ माइल पश्चिम की ओर, पुराने शहर की जगा पर, हाल 'अनावाडा' नामक एक छोटा गाँव है। जो प्राचीन नामक अभी तक का सातत्य बताता है।

उपरोक्त नाम तद्परांत पाटण का दूसरा एक पर्याय नाम मिलता है और यह उसकी व्युत्पति संस्कृत अतिवृध्ध उपर से जान शके और उसका शब्दार्थ 'अतिशय वृध्धि पामा हुआ विशाल' ऐसा होता है। प्राचीन संस्कृत साहित्य में उज्जयिनी का एक नाम 'विशाला' है। उसके जैसा ही यह नाम है। दूर कर्णाटक में रचाया हुआ स्वयंभू, कविना, अपभ्रंश महाकाव्य, पउमचरिउ (इ.स.८४० से ९२० की बीचमें) यह नाम मिलता है।

(रामपुर गोल, प्रतिष्ठान का बाण और अइवड का बहुत पहचाना विलासी), 'पउमचरिउ' के संस्कृत टिप्पणकारने (यह अणहिलपु पतन का नाम है) ऐसी स्पष्ट समज इस नाम की दी है।

यह उल्लेख पर से जो तारण मिलता है वह बहोत रसप्रद है। चावडाओ के राज्य का अंत आया और इ.स.९४२ में चौलुक्य वंश के पहले राजा मूलराज पाटण की गादी पर आये और उसके बाद एक महानगर तरीके से पाटण का विकास हुआ ऐसी एक मान्यता इतिहासकारो में प्रचलित है लेकिन 'पउमचरिउ' में एक सुविख्यात नगर के नाम से पाटण का उल्लेख हो यह बताता है कि गुजरात में चौलुक्य वंश की स्थापना हुई उसके पहले ही यह नाम प्रचलित हुआ है और दूर कर्णाटक तक प्रचलित हुआ था। यह भी दर्शाता है कि वनराज से शुरु हुआ चावडाओ का राज्य आरंभ में छोटी टकराहट जैसी होगी लेकिन निदान उतरकालीन चावडाओ के राज्य के पहले उसकी राजधानी 'अतिविशाल' नगर रुप में विकसी थी। मूलराज को चावडाओ के पास से एक आबाद नगर मिला था। जिसकी जाहोजलाली चौलुक्य काल में कुमारपाल के समय तक बढती गई। अणहिलवाड पाटण के सभी पर्याय नामो में से गजरात की अनुश्रूति में अमर बने हुए वनराज-मित्र अणहिल भरवाड के नाम के साथ संबंध है।

उस के बाद उन्होने काव्य और नीति की भी बात को है। उनका मानना है कि, काव्य में जो उपदेश नीकलता है उसके साथ संबंध रखने का एक मुद्दे का ग्रंथकार निराकरण करता है। बाकी काव्य का उपदेश अच्छा हो या बुरा हो। वह काव्य की व्याख्या बताते हुए कहते है कि,

अदैव सुगुणो सालङारो च शब्यार्थो काव्यम।।
यानि
''दोष बिना का गुणयुक्त, अलंकार सहित ही, शब्द और अर्थ वह काव्य।''
उन्होने काव्य की व्याख्या बनायी और उसके बाद काव्य में रहे हुए ध्वनि की बात की।

हेमचंद्राचार्य ध्वनि के बारे में बताते ध्वनि यानी क्या ? तो (१) जो सहीसलामत रहता है या व्यजित होता है (२) जो स्पष्ट प्रतीति का विषय बनता है और (३) पढने के बगेर तीन अर्थो से अलग है, उसका ही व्यंग या सूचित अर्थ कहता है। ध्वनि एक शब्द है। जो सहीसलामत है। वह अर्थ **ध्वन्यते (व्यज्यते) द्योत्यत ईति ध्वनि।** श्री हेमचंद्राचार्य और काव्यप्रकाशन के टीकाकार माणेकचंद्र भी **''ध्वन्यते द्योत्यते इती द्योत्यव्यग्यम।''** यह शब्द में ध्वनि की सही समझ देते है। यह ध्वनी ही काव्य की आत्मा है।

हेमचंद्राचार्य के मुताबिक व्यंग्य अर्थ या 'ध्वनि' वाच्यार्थ, गौणार्थ और लक्ष्यार्थ यह तीन प्रकार के अर्थो का विवेचन करने के बाद अब चोथे प्रकार का अर्थ का निरुपण अपेक्षित है। इसीलिए 'काव्यानुशासन' के प्रथम अध्याय के १९ मे सूत्र (१.१९) में, श्री हेमचंद्राचार्य, व्यंग्य अर्थ या काव्यात्मारुप ध्वनि के विवरण हाथ देते है और पहले उसकी व्याख्या देते है।

मुखाद व्यतिरिक : प्रतीयमानो व्यंग्मो ध्वनि : ।। अर्थात ''मुख्यार्थ आदि से अलग और सूचित हुए जो व्यग्यार्थ उसको ध्वनि कहते है।''

'अलंकारचूडामणि' वृति में सूत्रार्थ की स्पष्टता की है। ''मुख्यार्थ, गौणार्थ और लक्ष्यार्थ यह तीनो अर्थो से अलग और प्रतीति का विषय होने के अर्थ को व्यंग्य अर्थ कहते है और जो प्राचीन आचार्यो ध्वनि ऐसा नाम दिया है और **ध्वन्यते** यानि **द्योत्यते** यानि जो सूचित करते है। ऐसी उसकी समज देते है। यह ध्वनि १. वस्तुध्वनि २. अलंकारध्वनि और ३. रसादिध्वनि यह तरीके से तीन प्रकार का है।

यह वृत्ति आगे चलती है लेकिन यहाँ सूत्रार्थ को समजने के लिए वृति ऐशे अंश का विवरण आवश्यक है।

⁂ हेमचंद्राचार्य के मुताबिक ध्वनि का सिध्धांत :

ध्वनि सिध्धांत के मुताबिक, ध्वनि ये काव्य की आत्मा है और यह 'व्यजना' नामक शब्द का तद्न अलग ही व्यापार द्वारा व्यक्त होता है। यह ध्वनि अर्थरुपो हंमेशा व्यंग होता है और वह वाच्य, गौण तथा लक्ष्य अर्थ से तद्न अलग ही होता है। धवन्यालोक में यह अलंकारशास्त्र में तीन अलग-अलग प्राचीन मतो का उल्लेख है। जो ध्वनि काव्य के आत्मा के तौर पर स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं। यह तीन मत धरावनार है (१) ध्वन्यभाववादी (२) लक्षणावादी या भक्तवादी और (३) अनिदेश्यवादी. एसमें पहले मत के मुताबिक ध्वनि है ही नहीं, सिफ शब्दार्थ से ही काव्य की रचना होती है और वाच्यार्थ में ही अनोखा चारुत्व है। इसीलिए अलग ध्वनि कैसा होता है। दूसरे मत मुताबिक ध्वनि भक्त यानि की लक्षार्थ ही है। ध्वनी का स्पर्श कोनसा है ? लेकिन ध्वनि का पूरा ताग मोल शका नहीं और आखिर तीसरे मत मुताबिक ध्वनि की व्याख्या बनानी मुश्किल है। इसीलिए ध्वनीतत्व वाणी को आगोचर है। सिफ हृदय से से ही जान शकते है।

⁂ हेमचंद्राचार्य के मुताबिक ध्वनि का स्वरुप और ध्वनि के प्रकार :

उनके ध्वन्यलोक ग्रंथ में आनंदवर्धनाचार्य और ध्वन्यालोक की लोचन टीका में अभिनवगुप्त यादाचार्य (१) ध्वनि यह शब्द की उत्पति (२) ध्वनि का अर्थ और (३) ध्वनिव्यापार यह तीन बाबतो का विवरण किया है।

ध्वनि या व्यंजना के स्वरुप के बारे में मत मतांतर थे। अभिनवगुप्तने यह पांच मतो की चर्चा की है और पक के 'अलकार सर्वस्व' पर की विमर्शिनी टीका का लेखक जयरथने ध्वनि का विरोध करके बार संतो का उल्लेख किया है लेकिन उनके बडे भाग के विरोधी मत वाच्यार्थ के आसपास केन्द्रित थे अथवा ज्यादा से ज्यादा वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ पर मदार रख कर दलील करते थे। इसीलिए यह सभी ध्वनि विरोधीओ के वाच्यार्थवादी एक ही शब्द से पहचाना जाता है। बल्कि ध्वन्यालोक की बिजीवारिका (१.२) में, अर्थना (१) वारथ और (२) प्रतियमान ऐसे दो प्रकार दर्शाये है और वाच्यार्थ अर्थना प्रसिध्ध यानि की सामान्य या लौकिक अर्थ गीना है। जबकि प्रतितमान या व्यंग अर्थ के असामान्य या अलौकिक गीना है ? यह अलौकिक अर्थ जो प्रतितमान या व्यंग अर्थ कहलाता है वह वाच्यार्थ से तद्दन अलग ही होता है और यही काव्य की आत्मा है। 'ध्वन्यालोक (१.४) में यह प्रतियमान अर्थ के बारे में कहा है कि -

प्रतियमान पुनरन्यदेव वरत्वस्ति वाणीषु महाकविनाम।
यफ्त्प्रसिध्धावयवातिरिक विभाति लावण्यमिवाडनासु।

अर्थात यह 'प्रतियमान' अर्थ को महाकविओ की वाणी में रहा हुआ प्रसिद्ध अवयवो से भिन्न, सुंदर, स्त्री के पूरे देह में डूबी हुई लावण्य जैसी तद्दन अलग ही चीज है।

स्त्रीओं का सही सौंदर्य या लावण्य जैसे उसके शरीर के आकार, वेशभूषा, गहने या प्रसाधनो करके कोई अलग ही चीज है। यह तो पूरी रचना का सौंदर्य है। उसके अंशो का या बाह्य अलंकारो का नहीं। अलंकार, गुण, रीत, वृत और संघट जैसे काव्य के अन्य तत्व से भिन्न और यह सभी में सर्वोपरी है। ध्वनि या व्यगार्थ काव्य में गुण होता है। अलंकार हो और दोष न हो ऐसे मात्र से काव्य सुंदर बन जाता नहीं लेकिन दूसरे सब अर्थो से भिन्न प्रतियमान अर्थ ही काव्य का प्राण है। जैसे लावण्य स्त्री के सौंदर्य का प्राण है। व्यास, वाल्मीकी, कालिदास और दूसरे कविओ के अमर काव्यो में यह प्रतिमान अर्थ ही समाया हुआ है।

⁂ हेमचंद्राचार्य के मुताबिक ध्वनि का अर्थ :

अभिनवगुप्त के मुताबिक ध्वनि यह सन्या शब्द को अर्थ की तथा व्यजना व्यापार की अलग अलग तरीके से तथा सभी तरीके से लागु पडता है। काव्य सभी के लिए लेकिन ध्वनि शब्द का उपयोग होता है। ध्वनि यानि १. व्यजक २. व्यग्यार्थ का वाहक वाच्यार्थ ३. व्यंग अर्थ ४. व्यजना शक्ति ५. व्यंग काव्य या ध्वनिकाव्य ध्वनि साहित्य मिमांसा का बहोत ही विकसीत संमप्रत्य और वह वैयाव्याकरण का ध्वनि से बहोत दूर नीकला हुआ काव्यार्थ है।

⁂ हेमचंद्राचार्य का ध्वनि-निरुपण :

सुत्र ओगणीस में श्री हेमचंद्राचार्य व्यंग्य अर्थ या ध्वनि का निरुपण किया है। इसीलिए उन्होने वृति में ध्वनि का अर्थ के मुताबिक समझ देने पूर्वाचार्य के जानमाने वचन किये है। यह ध्वनि तीन प्रकार का है : वस्तुध्वनि, अलंकारध्वनि और रसादिध्वनि. यह तीन में से पहला वस्तुध्वनि, मुख्यार्थ, गौणार्थ और लक्ष्यार्थ तद्दन अलग है। टूंकमां यह दूसरे सब अर्थो से भिन्न है। वस्तुध्वनि प्रतीयमान अर्थ का प्रकार है और अभिनवगुप्त कहते है कि प्रतीयमान अर्थ, भाषा की चतुर्थ कक्षा या चोथा स्तर रहा है। हेमचंद्राचार्य सुत्र (१९) में 'प्रतीयमान' शब्द का उपयोग किया है लेकिन वृत में 'प्रतिविषय' यह शब्द का उपयोग किया है। उसके अनुसंधान में बहोत स्पष्ट करने के लिए विवेक टीका में लिखा है। यह श्रीमान आनंदवर्धनने 'ध्वन्यालोक' के प्रथम उद्योत को चोथी कारिका में प्रतीयमान अर्थ का स्वरुप दिया है। वह उल्लेखपात्र है। इत्यादि शब्द में उन्होंने कहा है कि स्त्री के लावण्य की माफक काव्य के विविध अंग और तत्वो से भिन्न ऐसा कोइ दूसरा ही अर्थ महाकविओ की वाणी में वीलसा है। वही प्रतीयमान अर्थ है। यह अर्थ कदापि वाच्य या लक्ष नहीं होता लेकिन हमेशा काव्य का आस्वा लेनेवाला संवेदनशील सहदय द्वारा अनुभवा होता है। ध्वन्यो लोक की उपरोक्त कारिका में प्रतीयमान अर्थ का यह सहदय स्लाध्य स्वरुप प्रगट होता है। हेमचंद्राचार्यने ध्वनि का यह सुंदर निरुपण और उस अंग का ख्याल दिया है।

⁂ हेमचंद्राचार्य के मुताबिक ध्वनि के तीन प्रकार :

१९ में सूत्र की आवृत्ति में 'मुख्यार्थ' 'गोणार्थ' और 'लक्ष्यार्थ' से भिन्न और भावक की प्रतिती का विषय होकर व्यंग अर्थ की व्याख्या करके यही व्यंगेनस पूर्वाचार्यो ध्वनि ऐसी संज्ञा दी है। ऐसा बताकर हेमचंद्राचार्य ने ध्वनि के तीन भेद दर्शाये है। वस्तुध्वनि, अलंकार ध्वनि और रसादिध्वनि ऐसे तीन नाम से पहचानते ध्वनि के यह तीन भेद 'ध्वन्यालोक' तथा 'लोचन' में प्राप्त हुए है। 'त्रीशिखर' ध्वनि को अनुसरता है लेकिन तीन भेदो का स्वरुप ग्रंथकार ने 'विवेक' व्याख्या में समझाया है। हेमचंद्राचार्यने ध्वनि के तीन प्रकारो की माहिती दी है। उनके मुताबिक 'ध्वनि' स्थितिस्थापक है।

⁂ ध्वनि की महत्वता :

एक तरफ से वस्तुध्वनि और अलंकारध्वनि और दूसरी तरफ से रसादी ध्वनि का भेद समझाते अभिनवगुप्त ने कहा है कि वस्तु या अलंकार (अलौकिक ध्वनिप्रकार) अभिधा शकित से बता शके लेकिन रसादी रुप 'अलौकिक' ध्वनि प्रकार हंमेशा व्यंग्य होता है। कदापि वाच्य होता नहीं। हेमचंद्राचार्यने यही बात विवेक में बतायी है।

आगे के समय में नजर नाखकर अपने को आचार्य आनंद वर्धने भी ध्वनि की बात की हुई अपने को देखने को मिलती है। उनके मुताबिक ध्वनि की व्याख्या देकर बताया है कि

यत्रार्थः शब्दो वा तमुपसजंनिकृतस्वार्थो।
व्यक्तः काव्यविशेषास ध्वनिरित सुरलिःकदित।

अर्थात : जहाँ अर्थ या शब्द अपने निम्न अर्थ को गौण बना देते है और प्रतीयमान अर्थ को व्यक्त करते है। वह काव्य विशेष को पूर्व सूर्याने 'ध्वनि' कहते है।

उनके ग्रंथ की शुरुआत में वह बतातेहै कि

काव्यस्य आत्माध्वनि :
काव्य आत्मा का ध्वनि है।

उनका मानना है कि उनको आनंदवर्धन आगे बढते शब्द की तीन शकित की भी बात की है। १. अभिधा शक्ति २. लक्षणा ३. व्यजना। उपर मुतिबिक देखे तो ऐसा जानने को मिलता है कि आनंदवर्धन और श्री हेमचंद्राचार्य का ध्वनि के बारे में ख्याल ज्यादा-कम प्रमाण में मिलता है और दोनोने काव्य में आत्मा के स्वरुप में ध्वनि को बताया है।

उपर के हिसाब के देखे तो श्री हेमचंद्राचार्य द्वारा ध्वनि का स्वरुप, ध्वनि के प्रकार, ध्वनि की व्याख्या, ध्वनि का सिध्धांत और ध्वनि का अर्थ यह संपूर्ण के बारे में उसके ग्रंथ 'काव्यानुशासन' में दिया है।

⁂ संदर्भग्रंथ सुचि :

१. परीख रसीकलाल, 'गुजरात का राजकीय और सांस्कृतिक इतिहास', ग्रंथ-४, अहमदाबाद, १९७२
२. परीख रसीकलाल, 'गुजरात की राजधानीयाँ', अहमदाबाद, १९५९
३. देसाइ मो.ह. जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास
४. गांधी, लालचंद्र भ., ''ऐतिहासिक लेखसंग्रह'', वडोदरा, १९६३
५. जोशी उमाशंकर, ''पुराणो में गुजरात'', अहमदाबाद, १९४६
६. मुनि जिनविजयजी, ''प्राचीन गुजरात की सांस्कृतिक इतिहास की साधनसामग्री'', गुजरात साहित्य सभा, १९३३-३४ की कार्यवाही
७. 'अलंकारसर्वस्व' (विमर्शिनी) रुय्यक, दूसरी आवृत्ति, स.रेवाप्रसाद त्रिवेदी, १९७९

डा. शंकर वि. पटेल
आसि.प्रोफसर, श्री आदर्श आर्टस कोलेज, दियोदर (गुजरात)

LBP PUBLICATION